शारीरिक शिक्षा के उद्देश्य

अदिति मुतातकर और आकाश लुगुन

स्कूलों में शारीरिक शिक्षा हमेशा से एक पेचीदा विषय रहा है। हालाँकि इसे ज़्यादातर सीनियर सैकंडरी स्कूलों के पाठ्यक्रम में शामिल किया गया है और उनमें शारीरिक शिक्षा के लिए एक शिक्षक भी रहता है। लेकिन आमतौर पर उसका काम बालों की लम्बाई और नाखूनों की जाँच करना या विद्यार्थियों को निजी साफ़-सफ़ाई और अनुशासन के मापदण्ड पर ख़रा न उतरने पर सज़ा देने तक ही रहता है। राष्ट्रीय समारोहों के दिनों में वे सबसे आगे रहते हैं। दूसरे विषयों के विपरीत शारीरिक शिक्षा में किसी तरह का कोई मूल्यांकन नहीं होता। स्कूल के सीखने-सिखाने के उद्यम में शारीरिक शिक्षा के योगदान को स्वीकार करना अक्सर मुश्किल होता है।

एक संगठन के रूप में, *'आर्ट ऑफ़ प्ले'* में हमारा उद्देश्य स्कूल के सीखने-सिखाने के उद्यम में शारीरिक शिक्षा की भूमिका को बढ़ाना है। शिक्षकों, शिक्षक–प्रशिक्षकों, शैक्षिक प्रशासकों और पाठ्यक्रम बनाने वाली संस्थाओं में शारीरिक शिक्षा की अधिगम प्रक्रिया की समझ विकसित करने के उद्देश्य से हम दिल्ली और हरियाणा के आठ सरकारी विद्यालयों में शारीरिक शिक्षा पर गहन काम कर रहे हैं। इस लेख में हम शिक्षा के व्यापक उद्देश्यों को प्राप्त करने में शारीरिक शिक्षा के योगदान के बारे में चर्चा करेंगे।

सरकारी स्कूलों में शारीरिक शिक्षा की मौजूदा स्थिति

युवा कार्यक्रम और खेल मंत्रालय की 2015 की रिपोर्ट के मुताबिक़ भारत के 93.7 % नौजवानों की संगठित खेलों तक कोई पहुँच नहीं है। हालाँकि एनसीएफ़ 2005 शारीरिक शिक्षा को पाठ्यक्रम का एक ज़रूरी हिस्सा बनाने की सिफ़ारिश करता है और भारत के सभी शैक्षिक बोर्डों ने इसे एक अनिवार्य विषय भी बनाया है, लेकिन फिर भी इस विषय और इसे पढ़ाने वाले शिक्षक, दोनों को ही वैसा सम्मान और महत्त्व नहीं मिल पाया है जैसा, मिसाल के लिए, गणित या विज्ञान विषय और उसे पढ़ाने वाले शिक्षकों को मिलता है।

सरकारी स्कूलों के पदानुक्रम में शारीरिक शिक्षा का दर्जा

शारीरिक शिक्षा के बारे में दूसरे विषयों के ज़्यादातर शिक्षकों का नज़रिया काफ़ी संकुचित होता है। शारीरिक शिक्षा के शिक्षक अक्सर ही स्कूल की समय-सारिणी में अपनी मर्ज़ी का समय हासिल नहीं कर पाते। अध्यापकों और प्रबन्धकों के साथ बातचीत के दौरान हमने यह पाया कि शारीरिक शिक्षा अक्सर ही स्पष्ट उद्देश्यों की कमी से जूझती हुई नज़र आती है।

शारीरिक शिक्षा का फलसफ़ा बहुत हद तक व्यक्तिनिष्ठ है और काफ़ी अर्से से शिक्षाशास्त्रियों में बहस का मुद्दा रहा है, जहाँ तक *'आर्ट ऑफ़ प्ले'* का सवाल है, हमारा मानना है कि शारीरिक शिक्षा अपने शरीर के बारे में जागरूकता के विचार के गिर्द घूमती है। शरीर, मन और सहज-प्रवृतियों के आपसी सम्बन्ध ही हमारे पाठ्यक्रम के केन्द्रबिन्दु हैं, जहाँ यह गुंजाइश रखने की ज़रूरत है कि हर विद्यार्थी को अपनी ही गति से सीखने का मौक़ा मिल सके और यही स्वाभाविक रूप से शारीरिक शिक्षा को अभिव्यक्ति का एक माध्यम बनाता है।

वहीं दूसरी तरफ़ रूढ़िवादी नज़रिया परम्परागत मूल्यों जैसे गर्व, मज़बूत इरादों, साहस और शारीरिक गुणों को बढ़ावा देने को ही शारीरिक शिक्षा का उद्देश्य मानता है। कुछ सरकारी स्कूलों में शिक्षाशास्त्री और शिक्षक ख़ुद को अक्सर ही इन विचारों के बीच कहीं फँसा हुआ पाते हैं। हालाँकि सैद्धान्तिक तौर पर वे यह मानते हैं कि शारीरिक शिक्षा सभी विद्यार्थियों के लिए ज़रूरी है, लेकिन व्यवहार में वे खेलों में उत्कृष्टता हासिल करने पर ही ज़ोर देते हैं। इसी वजह से हम अक्सर इन मामलों में नाकाम ही रहते हैं।

कक्षागत पाठ्यक्रम

अम्बाला, फ़रीदाबाद और दिल्ली के स्कूलों में काम करते हुए हमने ऐसी कुछ समान बातें देखीं जो स्कूलों में इस विषय की मौजूदा हालत पर रोशनी डाल सकती हैं। शारीरिक शिक्षा के शिक्षकों के पास विभिन्न कक्षाओं के हिसाब से तैयार किए हुए पाठ्यक्रम ही नहीं हैं, जिनमें शरीर और जीवन से जुड़े ऐसे कौशल सिखाने पर ज़ोर दिया गया हो, जो अपनी उम्र के लिहाज से बच्चे को आने चाहिए।

शिक्षकों के प्रशिक्षण का अभाव

पिछले बारह वर्षों में हरियाणा के शारीरिक शिक्षा के अध्यापकों को किसी भी तरह का कोई प्रशिक्षण नहीं मिला, जो उन्हें अपने ज्ञान को उन्नत करने या अपने सहकर्मियों के साथ सीखने-सिखाने के मौक़े प्राप्त करने में मदद कर सके।

शारीरिक शिक्षा के उद्देश्य क्या हैं?

2005 में एनसीएफ़ द्वारा तय किए गए शिक्षा के कुछ उद्देश्य इस तरह से हैं :

'लोकतंत्र, समानता, न्याय, स्वतंत्रता, परोपकार, धर्मनिरपेक्षता, मानवीय गरिमा व अधिकार तथा दूसरे के प्रति आदर जैसे मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता; विचार तथा क्रिया की आज़ादी, स्वतंत्र तथा सामूहिक रूप से सावधानीपूर्वक विचार किए गए मूल्य-निर्धारित निर्णय लेने की क्षमता की तरफ इशारा करते हैं; दूसरे लोगों की भावनाओं व कल्याण के प्रति संवेदनशीलता; सीखने के लिए सीखना, जो सीखा है उसे छोड़ने की और दुबारा सीखने की तत्परता।' (एनसीएफ़ 2005)

अब आगे हम शारीरिक शिक्षा के माध्यम से इन मूल्यों को सीखने के अपने अनुभवों को साझा करेंगे।

पूर्वज्ञान को छोड़ना एवं कार्य के माध्यम से नया ज्ञान अर्जित करना

खेलों में किसी भी हुनर को सिर्फ़ करते हुए ही सीखा जाता है, इसके अलावा और कोई तरीक़ा नहीं है। यहाँ इस बात पर ध्यान देना भी ज़रूरी है कि यह सक्रिय हिस्सेदारी मानसिक भी होती है और शारीरिक भी। अगर आप फ़ुटबाल सीखना चाहते हैं, तो सिर्फ़ खेल को देखना या उसके बारे में पाठ्यपुस्तक में पढ़ लेना ही काफ़ी नहीं है। आपको मैदान में उतरना होगा, दिमाग़ लगाना होगा, और किक में महारत हासिल करने के लिए लम्बे समय तक उसका अभ्यास करना होगा। हमारी कक्षाओं में विद्यार्थी अभ्यास कार्य करते हुए ही अपने हुनर और ज्ञान को निखारते हैं, अपनी ही रफ़्तार से अपना विशेष अनुभव इकट्ठा करते हुए।

साहिल, नई दिल्ली के हमारे एक स्कूल का तीसरी कक्षा का विद्यार्थी है, जिसे आँख-मिचौली खेलना बहुत पसन्द है। इस खेल में एक त्रिभुज के आकार में तीन शंकुओं पर छह गुम्बदों (गोलों) को टिकाना होता है। तीन मिनट में हर शंकु पर दो गुम्बद टिकाने होते हैं। शर्त सिर्फ़ इतनी होती है कि टीम के एक सदस्य की आँखों पर पट्टी बँधी होगी, जबकि बाक़ी के तीनों खिलाड़ी समय सीमा के अन्दर लक्ष्य हासिल करने के लिए उसे सही तरीक़े से सुझाव और हिदायतें देंगे।

आँख-मिचौली के अपने एक सत्र में हमने उस गेम को लगातार तीन बार खेला। तीनों बार साहिल ने ही अपनी आँखों पर पट्टी बँधवाई और हर बार अपनी टीम को जितवाया भी और वो भी दो मिनट से कम समय में।

सत्र के अन्त में जब मैं सारा सामान इकट्ठा कर रही थी, साहिल मेरा काम ख़त्म होने का इन्तज़ार कर रहा था जबकि उसकी कक्षा के सारे बच्चे जा चुके थे। वो मेरे पास आया और बोला,

साहिल की आँखों पर बँधी पट्टी की पड़ताल करते हुए

"दीदी, मैंने आज हेरा-फेरी की, नीचे से मुझे सब दिखाई दे रहा था। हालाँकि तीनों बार मैं जीता, लेकिन मुझे सचमुच मज़ा नहीं आया और न ही जीतना इतना अच्छा लगा। अगर मैं बिना हेरा-फेरी के जीता होता, तो मुझे खेल का कहीं ज़्यादा मज़ा आया होता!"

45 मिनट के समय में साहिल ने पहले यह सीखा कि अगर वह हेरा-फेरी करता है तो वह आसानी से जीत जाएगा और इनाम हासिल कर लेगा। सत्र के अन्त में उसने पहले सीखे हुए सबक़ को छोड़ा और नए सिरे से इस बात को सीखा कि हेरा-फेरी से असल में खेल का मज़ा मारा जाता है और यह भी कि इस तरह से जीतकर उसे उतना अच्छा नहीं लगा जितना ईमानदारी से जीतने पर लगता है।

साथियों से सीखना

एक और महत्त्वपूर्ण बात जो बच्चे एक-दूसरे से सीखते हैं वह है - विचारों की स्वतंत्रता और दूसरों के प्रति संवेदनशीलता।

बहुत सारे बच्चे जब किसी चीज़ के बारे में शिक्षक से पूछते हैं, तो एक बार पूछना तो उन्हें बिलकुल आसान लगता है, लेकिन दूसरी बार उसी सवाल को पूछने में उन्हें थोड़ी झिझक होती है। ऐसे में अपने सहपाठियों और बड़ी कक्षा के किसी विद्यार्थी से पूछने में उन्हें ज़्यादा आसानी होती है। हमारे प्रोग्राम में हम इस बात को बढ़ावा देते हैं कि बड़े बच्चे, छोटी कक्षा के बच्चों को पढ़ाएँ। यह दोनों ही पक्षों के लिए बेहतर होता है। छोटे बच्चे ऐसी कक्षाओं का मज़ा लेते हैं क्योंकि बड़ी उम्र के अपने साथियों के साथ किसी चीज़ को सीखते या उसका अभ्यास करते हुए वह ज़्यादा सहज होते हैं, जबकि बड़े बच्चे स्वतंत्र रूप से काम करना सीखते हैं और छोटे बच्चों को सिखाने की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर लेते हैं।

सुमित और राहुल, अम्बाला के एक स्कूल में आठवीं कक्षा के विद्यार्थी हैं, जब उनके शारीरिक शिक्षा के शिक्षक कहीं व्यस्त होते हैं या छुट्टी पर होते हैं तो वे छोटे बच्चों की कक्षा

लेते हैं। सुमित और राहुल दोनों ने ही पढ़ाते वक़्त कई तरह की चुनौतियों का सामना किया। मिसाल के लिए उन्होंने देखा कि छठी कक्षा की एक लड़की, जिसकी क्षमताएँ दूसरों से अलग थी, खेलों के उनके सत्र में हिस्सा नहीं लेती थी। हफ़्ता भर यह देखने के बाद कि वह बस बैठे-बैठे कक्षा के दूसरे बच्चों को

8 वीं कक्षा के सुमित और राहुल छठी के बच्चों की खेलों की क्लास लेते हुए

मस्ती करते हुए देखती रहती है, उन्होंने यह फैसला किया कि उसे भी खेल में शामिल किया जाना चाहिए। शुरू में कक्षा का कोई बच्चा उसे अपनी टीम में नहीं लेता था। फिर सुमित और राहुल ने भी खेलों में हिस्सा लेना शुरू किया और वह हमेशा अपनी टीम में सबसे पहले उसे ही चुनते। धीरे-धीरे सारी कक्षा ने यह स्वीकार किया कि खेलने का हक़ तो उस लड़की का भी है और वह उसे खेल में शामिल करने के रचनात्मक तरीक़े भी ढूँढ़ने लगे।

खेल के मैदान में खड़ी हुई एक अनोखी समस्या का सुमित और राहुल ने अपने तरीक़े से हल निकाला। उस लड़की की भावनाओं के प्रति संवेदनशीलता और खेलों में निहित सबको शामिल करने की भावना, यह दोनों ही उनके फ़ैसले का आधार बने।

टीम में काम करते हुए लोकतांत्रिक मूल्यों को सीखना

प्रत्येक सत्र के लिए हम जो भी खेल या गेम डिज़ाइन करते उनके पीछे एक ही बुनियादी सिद्धान्त रहता था- हम सिर्फ़ टीम में खेले जाने वाले खेल को ही चुनते। जब हम टीम बनाकर खेलते हैं तो उससे सीखने की प्रक्रिया में बहुत तेज़ी आ जाती है। वहाँ बच्चों को अपनी और विरोधी, दोनों ही टीमों के साथ अन्तर्क्रिया के दौरान समानता, एक-दूसरे का सम्मान करने और न्याय की भावना को सीखने के मौक़े मिलते हैं। टीम में खेलते हुए बच्चे को अपने आप से ऊपर उठकर एक व्यापक परिपेक्ष्य में सोचना पड़ता है। किसी भी टीम को जीतने के लिए लोकतांत्रिक तरीक़े से काम करना पड़ता है। अगर टीम के सदस्य एक-दूसरे के साथ न्यायपूर्ण और समानता का व्यवहार नहीं करते, एक-दूसरे के विचारों का आदर नहीं करते और प्रत्येक सदस्य को स्वतंत्र रूप से सोचने और आगे बढ़ने के मौक़े नहीं देते तो वे कभी भी एकजुट टीम के रूप में नहीं उभर पाएँगे और ऐसे में उन्हें हर बार हार का सामना करना पड़ेगा। टीम के हर सदस्य को एक रचनात्मक भूमिका निभानी होती है और इस बात को सुनिश्चित करना पड़ता है कि टीम के सभी सदस्य टीम में अपनी भूमिका के महत्त्व को समझें और उससे सहमत हों।

इसकी एक मिसाल फ्रिस्बी का खेल है। यह अपने आप में अनूठा है क्योंकि इसमें लड़के-लड़की का कोई भेद-भाव नहीं, और इसका सारा ज़ोर खेल पर और खेल भावना पर ही है। एक स्कूल की फ्रिस्बी टीम में शुरू में हमें एक चुनौती का सामना करना पड़ा, जहाँ सारा खेल कुछ चुने हुए खिलाड़ियों के (ज़्यादातर लड़कों के) बीच ही चलता और बाक़ी खिलाड़ियों (ज़्यादातर लड़कियों) को डिस्क को पकड़ने का मौक़ा ही नहीं मिलता था। शिक्षकों ने लड़कियों को खेल में शामिल करने के लिए लड़कों को खूब प्रेरित किया, लेकिन उसका कुछ फ़ायदा नहीं हुआ। दरअसल, टीम के खिलाड़ियों को एक-दूसरे पर भरोसा ही नहीं था।

जैसे-जैसे टीम ने खेल को समझा और बेहतर तरीक़े से खेलना शुरू किया, तो उन्हें यह बात समझ में आई कि टीम के हर सदस्य को पास देने का क्या महत्त्व है। जब डिस्क सिर्फ़ लड़कों के पास ही रहती तो विरोधी टीम के लिए बड़ी आसानी हो जाती, क्योंकि उन्हें सिर्फ़ लड़कों को ही रोकना होता और वे जीत जाते। जैसे ही लड़के अंक हासिल करने का सारा दबाव अपने ऊपर लेते, तनाव की वजह से डिस्क उनके हाथों से

एक फ्रिसबी टूर्नामेंट में हमारे दिल्ली स्कूल की टीम। जितना ही वो एक-दूसरे पर भरोसा करते उतना ही एक टीम के रूप में बेहतर खेलते।

निकलने लगती। कई सत्रों के बाद, लड़कों को डिस्क पकड़ने और उन तक उसे पास करने के लिए लड़कियों पर भरोसा करना पड़ा। ऐसा होते ही लड़कियों ने और भी उत्साह से खेलना शुरू कर दिया। अपने खेल से उन्होंने ख़ुद को भी हैरान कर दिया और लड़के इस बात से अचम्भित थे कि लड़कियाँ कितना अच्छा खेल सकती हैं।

एक स्कूल स्तर के फ्रिस्बी खेल ने लड़कों को यह समझने में मदद की कि लड़कियों के साथ उनका व्यवहार अपमानजनक और अन्यायपूर्ण था और अपनी टीम के लिए प्रदर्शन करने की उनकी स्वतंत्रता में रुकावट बन रहा था। जीतने की ज़ोरदार इच्छा ने उन्हें अपने व्यवहार पर फिर से सोचने और लड़कियों को अपने बराबर मानने के लिए मजबूर कर दिया। एक लड़की को पहला पास देने के साथ ही उन्होंने इन लोकतांत्रिक मूल्यों को अपने व्यवहार में लाने के प्रति अपनी प्रतिबद्धता जाहिर कर दी।

मैदान के ऐसे कितने ही अनुभवों को देखते हुए, हम पूरे विश्वास के साथ यह कह सकते हैं कि यदि हमारे सरकारी स्कूलों में, शारीरिक शिक्षा के एक बेहतर पाठ्यक्रम को पूरे ज़ोर-शोर से लागू कर दिया जाए तो वह शिक्षा के उद्देश्यों को पूरा करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

अन्त में हम कह सकते हैं कि हालाँकि हमारे व्यावहारिक अनुभव इस बात के पर्याप्त सबूत देते हैं कि शिक्षा के उद्देश्यों को पूरा करने में शारीरिक शिक्षा एक ख़ास योगदान दे सकती है, लेकिन साथ ही हमें सांस्कृतिक सन्दर्भ और किसी पाठ्यक्रम को निर्धारित करने में उसकी भूमिका पर भी ग़ौर करना चाहिए। कलाओं की ही तरह, खेल और शारीरिक शिक्षा भी तभी जीवन्त होते हैं जब उनकी जड़ें उस समुदाय में हो जिसमें उन्हें काम करना है। स्थानीय समुदाय को और चिर-स्थाई सामाजिक मूल्यों को सीखने के लिए स्थानीय खेलों को शामिल करना, स्कूली पाठ्यचर्या में शारीरिक शिक्षा की जड़ों को गहराई देने में एक केन्द्रीय भूमिका निभा सकता है।

अदिति मुतातकर बैडमिन्टन की एक शानदार खिलाड़ी रही हैं जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर खेल चुकी हैं। 2010 में उन्होंने कॉमनवेल्थ खेलों में भारत के लिए रजत पदक हासिल किया था। उन्होंने टेक्सास विश्वविद्यालय, डेलास से पब्लिक अफेयर्स में पोस्ट-ग्रैजुएशन की डिग्री हासिल की है। वे *'आर्ट ऑफ़ प्ले'* फ़ाउंडेशन में पाठ्यचर्या की रूपरेखा बनाने वाली टीम का हिस्सा हैं। यह फ़ाउंडेशन सरकारी स्कूलों में शारीरिक शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए प्रतिबद्ध है। उनसे *aditi@artofplay.co.in* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

आकाश लुगुन गाँधी फैलो हैं और उन्होंने सूरत के सरकारी स्कूलों में खेल-शिक्षा को लागू करने में एक बड़ी भूमिका निभाई थी। इन दिनों वह *'आर्ट ऑफ़ प्ले'* फ़ाउंडेशन की तरफ़ से फ़रीदाबाद के तीस स्कूलों में शिक्षकों की ट्रेनिंग के लिए चलाए जा रहे प्रोग्राम के मुख्य संचालक हैं। वंचित समाज के लिए एक फ़ुटबाल स्कूल की स्थापना करना उनका सपना है। उनसे *akash@artofplay.co.in* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : बलराम बोधि **पुनरीक्षण** तथा **कॉपी एडीटिंग** : स्वाति भदौरिया